ISSN:2395-1079 Available online at http://wwwSajms.edwin.co.in
South Asia Journal of Multidisciplinary Studies SAJMS February 2021, Vol. 6, No1

आचार्य शिवपूजन सहाय का देशकाल

डॉ. राजेश कुमार धुर्वे
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
माड़ा जिला, सिंगरौली (म.प्र.)

प्रस्तुत शोधपत्र आचार्य शिवपूजन सहाय के देशकाल का अध्ययन करता है। इस बहाने हिन्दी साहित्य के इतिहास और उसमें आचार्य शिवपूजन सहाय के देशकाल की परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। आचार्य शिवपूजन सहाय ने 1910 से लेकर 1960 तक हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। डॉ.तारकनाथ बाली ने सही लिखा है कि व्यापक दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि छायावादी युग भारत की अस्मिता की खोज का युग रहा है। ऐसे समय में आचार्य शिवपूजन सहाय जैसे लेखकों की आवश्यकता थी, क्योंकि आचार्यजी को धर्मान्धता पसंद नहीं थी। उन्होंने सही लिखा था कि राम भक्ति की ओट में सारे देश में जो अत्याचार हो रहे हैं, उनसे कोई अंजान नहीं है। ऐसे और कई उदाहरण देखे जा सकते हैं, जो उनके यथार्थवादी दृष्टिकोण के परिचायक हैं।

साहित्य की किसी भी विधा में लिखी गयी कोई रचना वस्तुतः अपने देश– काल के सत्य को ही प्रकट करती है। अपने समय से टकराकर ही कोई रचना आकार ग्रहण करती है। किसी भी रचना में देशकाल का तात्पर्य जीवन–मूल्यों, जड़ता से संघर्ष, सामाजिक चेतना के विकास और मानव–समाज के सुख–दुःख, राग–विराग, आशा–निराशा, विश्वास और स्वप्नों से है। वास्तव में इसी समय का आकलन हम जीवन–संदर्भो के लिए करते हैं। मनुष्य इस समय का भोक्ता भी है और नियंता भी। इसी समय के प्रवाह को वह अपने आदर्शों और स्वप्नों को साकार करने हेतु अनुकूल दिशा में मोड़ने के लिए जो प्रयत्न, उद्यम और संघर्ष करता है, वह उसके संघर्ष–चेतनाशील होने का प्रमाण है। साहित्य, कला, संस्कृति तथा ज्ञान–विज्ञान के विविध आयामों का विकास, सफलता–विफलता और उसकी उपलब्धियाँ उसके इस संघर्ष का साक्षी होती है।

आचार्य शिवपूजन सहाय और उनके समय को जानने–समझने के लिए उनके देश काल को जानना आवश्यक है। इस पृष्ठभूमि को जाने बिना हम उनके रचनात्मक योगदान का सम्यक मूल्यांकन नहीं कर पाएंगे। उन्होंने जिन दिनों लिखना आरंभ किया, उस समय देश परतंत्र था। परन्तु इससे मुक्ति का कामना भी देश के हृदय में जग चुकी थी। इसकी पृष्ठभूमि में भारतेन्दु युग का नवीन परिवेश उपस्थित था। भारतेन्दु–युग में निर्मित्त इस नवीन परिवेश पर प्रकाश डालते हुए डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त लिखते हैं–''आलोच्य युग में जन–चेतना पुनर्जागरण की भावना से अनुप्राणित थी, फलस्वरूप सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों में न केवल अतिरिक्त सक्रियता थी, अपितु इन सबमें गहन अंतर्संबंध विद्यमान था।''

राष्ट्रीय भावना का उदय भी इस काल की अनन्य विशेषता है। ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण परमहंस और विवेकानंद के विचारों तथा थियॅासाफिकल सोसाईटी के सिद्धान्तों का प्रभाव भी जन–जीवन पर पड़ रहा था। आर्थिक, औद्योगिक और धार्मिक क्षेत्रों में पुनर्जागरण की प्रक्रिया आरंभ होने लगी थी। सहाय जी द्विवेदी–युग के अंतिम चरण के रचनाकार हैं। द्विवेदी–युग का महत्व इस दृष्टि से अधिक है कि इस काल में राष्ट्रीय–सांस्कृतिक जागरण का भाव साहित्य–सृजन का प्रेरक तत्व बना।

हिन्दी साहित्य के विकास में द्विवेदी–युग अविस्मरणीय है। साहित्य के दुर्लभ ग्रंथों की खोज, साहित्य के मूल्यों में परिवर्तन, 'सरस्वती', 'देवनागर', 'समालोचक', 'इन्दु', 'प्रभा',

'कर्मयोगी', 'अभ्युदय' और 'प्रताप' जैसे पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन से देश के जीवन में नये युग का आरंभ हुआ। द्विवेदी–युग के महत्व को रेखांकित करते हुए डॉ०रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं–''नयी जीवन–दृष्टि ने नयी भाषा को माध्यम बनाया। खड़ी बोली पूर्णतः प्रतिष्ठित हुई। उसे पंडिताउपन और ठेठ गंवारूपन से मुक्त करके मांजा–संवारा गया। वस्तुत हिन्दी–प्रदेश की जनता अपने सारे जीवन को नये ढंग से व्यवस्थित कर रही थी, अपने को नये युग के अनुकूल बना रही थी। इसलिए भाषा को भी युग की नयी चेतना की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम बनाने की चेष्टा की गयी। लेखकों का ध्यान हिन्दी के प्रचार–प्रसार और परिमार्जन के साथ ही उसके अभावों की ओर भी गया और सीमित साधनों को संघटित करके उन्होंने योजनाबद्ध रूप में साहित्य के अभावों की पूर्ति का प्रयत्न किया।

युग की नयी अभिव्यक्ति के लिए भाषा का नया संस्कार तत्कालीन समय की माँग थी। भाषा, लिपि और व्याकरण के क्षेत्र में महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाल मुकुन्द गुप्त, शालिग्राम द्विवेदी का नाम प्रमुख है। आचार्य द्विवेदी के संपादन में प्रसिद्ध पत्रिका 'सरस्वती' ने भाषा और साहित्य में नये युग का निर्माण किया। इस युग में बहुत सी नयी पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुई। सामाजिक, राजनीतिक चेतना के संवाहक इन पत्र–पत्रिकाओं ने देश में नवीन सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन्हीं विशेषताओं को लक्षित कर द्विवेदी युग को जागरण सुधार–काल की भी संज्ञा दी गयी है। आचार्य शिवपूजन सहाय के समय को समझने एवं उनके रचनात्मक योगदान के आकलन के लिए द्विवेदी–युग के इस परिवेश का स्मरण आवश्यक है, क्योंकि हिन्दी भाषा को युगानुरूप संस्कारित करने, साहित्यिक पत्रकारिता और साहित्य की विविध विधाओं में उनकी रचनाओं ने द्विवेदी–युग की उपलब्धियों को और अधिक विकसित और गौरव प्रदान किया।

आचार्य शिवपूजन सहाय के रचना–समय के अन्तः और बाह्य प्रवृत्ति को समझने के लिए छायावाद–युग को भी जानना आवश्यक है। छायावाद–युग की अवधि 1918 से 1938 तक माना गया है। सहाय जी का रचना–काल 1910 से 1960 के आरंभ तक का विस्तृत काल रहा है। छायावाद–युग की विशेषताओं पर विचार प्रकट करते हुए डॉ0 तारकनाथ बाली लिखते हैं– ''व्यापक दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि छायावाद–युग भारत की अस्मिता की खोज का युग है। सदियों की दासता के कारण भारतीय जनता आत्मकेन्द्रित होती हुई रूढिग्रस्त हो गयी थी। पाश्चात्य साम्राज्यवादियों के आगमन ने देश में एक विराट तूफान पैदा कर दिया था, जिसके कारण रूढ़ियों में सुप्त देश की आत्मा पूरी शक्ति और उद्वेलन के साथ जाग उठी। पाश्चात्य ढंग की शिक्षा ने विशेषकर अंगरेजी की शिक्षा ने देश के बुद्धिजीवियों के सामने एक क्षितिज का उद्घाटन किया। परिणामस्वरूप भारतीय मनीषी अपने परिवेश की त्रासपूर्ण विघटनकारी स्थिति के प्रति सजग हुए और उसके व्यापक सुधार की आवश्यकता की ओर उनका ध्यान आकर्षित हुआ।'' छायावाद युग के इसी परिवेश में आचार्य शिवपूजन सहाय ने हिन्दी के कई पत्र–पत्रिकाओं का सम्पादन किया जिससे पत्रकारिता के क्षेत्र में नये युग का सूत्रपात हुआ।

आचार्य शिवपूजन सहाय ने सर्वप्रथम सन् 1921–22 में आरा से निकलने वाली पत्रिका 'मारवाड़ी सुधार' का प्रकाशन किया। सन् 1923 में वे कलकत्ता से प्रकाशित प्रसिद्ध पत्र 'मतवाला' के संपादन मंडल में शामिल हो गये। इसके घोषित संपादक तो महादेव सेठ थे, पर इसके संपादन से नवजादिक श्रीवास्तव और छायावादी कवि 'निराल' भी जुड़े थे। यह पत्र हिन्दी का प्रथम हास्य–व्यंग्य प्रधान साप्ताहिक था। इसका मुख्य स्वर तो साहित्यिक था, परंतु इसमें सामाजिक–राजनीतिक विषयों की रचनाएँ भी प्रकाशित होती थीं। अंग्रेज सरकारी की जनविरोधी नीतियों की तीखी आलोचना भी इस पत्र में प्रमुखता से छपती थी। सन् 1925 में वे कुछ माह 'माधुरी' के संपादकीय विभाग में रहे। सन् 1930 में बिहार के सुल्तानगंज (भागलपुर) से प्रकाशित

होनेवाली मासिक पत्रिका 'गंगा' के संपादक मंडल से जुड़ गये। सन् 1931 में उन्होंने काशी से प्रकाशित साहित्यिक पाक्षिक 'जागरण' का संपादन किया। सन् 1950 ई० में बिहार हिन्दी सम्मेलन की त्रैमासिक पत्रिका ''साहित्य के संपादक बने। कलकत्ता प्रवास के दिनों में उन्होंने 'मौजी, 'आदर्श', 'गोलमाल', 'उपन्यास' और 'समन्वय' के संपादन में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

आचार्य शिवपूजन सहाय के लिए संपादन कार्य आजीविका का साधन मात्र नहीं था। देश के नवनिर्माण में पत्र–पत्रिकाओं का महत्व वे समझते थे। नवीन विचारों के प्रकाशन, जनभावनाओं को प्रकट रूप में रखने और समकालीन प्रश्नों को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने, नवजागरण की चेतना को बल प्रदान करने वाले इस माध्यम की अनिवार्य आवश्यकता से वे भली–भाँति परिचित थे। इसलिए कहानी, निबंध, उपन्यास आदि साहित्य–विधाओं में उत्कष्ठ लेखन के बावजद संपादन उनका प्रिय क्षेत्र रहा। उन्होंने अपने जीवन काल में तेरह पत्रिकाओं का संपादन किया। हिन्दी पत्रकारिता के विकास में इनके इस महत्वपूर्ण योगदान को रेखांकित करते हुए डॉ० प्रेमव्रत तिवारी लिखते हैं–''बाबू शिवपूजन सहाय में रचनात्मक प्रतिभा की कमी नहीं थी। आज उनकी प्रकाशित कृतियों में उनकी संवेदनशीलता, कल्पनाशक्ति और यथार्थ को मूर्त करने की क्षमता देखकर चकित रह जाना पड़ता है। जीविका के लिए उन्हें ऐसे कार्य करने पड़े जो संभवतः उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रतिफलित नहीं कर सकते थे। किन्तु उन्होंने भरण–पोषण के लिए उन्हें स्वीकार किया। रचनाशीलता के बाद पत्रकारिता ही उनकी प्रवृत्ति के अधिक निकट पड़ती थी। इसमें स्वयं भी रचना पड़ता था और दूसरों को भी प्रेरित उत्साहित करना पड़ता था। बाबू शिवपूजन सहाय ने अपने समय में पत्रकारिता को एक मिशन के रूप में ग्रहण किया इसीलिए सम्पादक के रूप में उनकी ख्याति अधिक हुई।

पत्र–पत्रिकाओं में समकालीन सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक एवं अन्य जवलन्त विषयों पर लिखे सम्पादकीय में देश के नव निर्माण की चिन्ता होती थी। देशकाल की वर्तमान स्थिति का सच्चा विवरण उनके ''डायरी लेखन'' में लिपिबद्ध हुआ है। राजनीति में प्रपंच, स्वार्थ और बढ़ते छल से व्यथित होकर 14 अप्रैल, 1952 को अपनी डायरी में उन्होंने लिखा था–''महात्मा गाँधी ने राजनीति में सत्य, अहिंसा, दया, विश्वप्रेम आदि का समावेश किया–कराया, पर उनके निधन के बाद उनके अनुयायी कहलाने वाले घोर स्वार्थी बन गये। स्वार्थांध लोगों ने कांग्रेस की कीर्ति को कलंकित कर दिया है। जान पड़ता है कि त्यागी नेता भी अधिकार–लोलुप बन गये हैं। कांग्रेसी लोगों में सच्चे देश सेवक एक–दो ही हैं।'' सिनेमा जैसी आधुनिक संचार और मनोरंजन के माध्यम के दुरूपयोग उन्हें सहृदय नहीं थी। 22 जनवरी 1948 को लिखी डायरी में अंकित है–''सिनेमा से जनता का चरित्र भ्रष्ट होता जा रहा है। कहानियों में रंगीली–छबीली पत्रिकाएँ भी जनता को व्यसनी–विलासी बना रही हैं। वासनाओं को जगाने–भड़काने वाले उपन्यास भी जनता को पथभ्रष्ट कर रहे हैं। सिनेमा के गीत–रचयिता कवि को भ्रष्ट कर रहे हैं और साथ ही जनता की मनोवृत्ति एवं रूचि भी बिगाड़ रहे हैं। हमारे कौंसिलर, पत्रकार, और नेता खुली आँखों से तमाशा देख रहे हैं। भगवान की क्या इच्छा है?'' उनकी डायरी इस तरह की टिप्पणियों से भरी हुई है। अपने समय की छोटी–बड़ी घटनाओं पर उनकी गहरी और पैनी दृष्टि रहती थी और इसे वे निबंधों, रचनाओं तथा सम्पादकीय टिप्पणी में भी दर्ज करते थे।

उनका सम्पूर्ण जीवन बिना किसी लालसा और आकांक्षा के हिन्दी के विकास तथा नये रचनाकारों के प्रोत्साहन, निर्माण में व्यतीत हुआ। 1914 ई० में इन्होंने आरा के टाउन स्कूल में अध्यापन–कार्य प्रारंभ किया, लेकिन 1920 ई० में महात्मा गाँधी के असहयोग आंदोलन में भाग लेने के लिए सरकारी नौकरी से त्याग–पत्र दे दिया। 1939 ई० में उन्होंने छपरा के राजेन्द्र

कॉलेज में हिन्दी के अध्यापक पद कार्य करना शुरू किया। 1941 ई० में इन्हें ''बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन' का अध्यक्ष बनाया गया। 1950 में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् की स्थापना होने पर उन्हें इसका प्रथम निदेशक बनाया गया। इस पद पर वे अगस्त 1959 तक मात्र 9 वर्ष की अल्प अवधि तक ही रहे, परंतु इस अवधि में इतना कुछ किया जो आज भी एक कीर्तिमान है। बिहार की आदिवासी भाषाओं, लोक भाषाओं के साहित्य, लोक कथाओं, लोकगीतों, मुहावरों, पहेलियों, लोकोक्तियों, कोशों का संकलन—प्रकाशन, इतिहास, दर्शन, विज्ञान, प्राचीन भारतीय भाषाओं के उत्कृष्ट ग्रंथों का प्रामाणिक अनुवाद, साहित्य—संस्कृति की पुस्तकों की अनगिनत पुस्तकों का प्रकाशन इसी अवधि की उपलब्धि है।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के निदेशक पद पर रहते हुए इन्होंने एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी किया कि साहित्य, इतिहास, विज्ञान, चिंतन के तत्कालीन विद्वानों से अनेक ऐसी पुस्तकों की रचना—प्रकाशन कराया, व्याख्यान मालाओं का आयोजन कराया। उनके इस उल्लेखनीय कार्य को रेखांकित करते हुए कर्मेन्दु शिशिर लिखते हैं—''अपनी—अपनी विधाओं के तमाम तत्कालीन शिखर विद्वान विशेषज्ञों द्वारा जो ग्रंथ तैयार कराए. उनकी चर्चा करते हुए वासुदेव शरण अग्रवाल की 'हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, राहुल जी की 'सरहपा' और 'मध्य एशिया का इतिहास, डॉ० अल्तेकर की 'गुप्तकालीन मुद्राएँ, नीलकंठ पुरूषोत्तम जोशी की 'प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान', आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', आचार्य नरेन्द्रदेव की 'बौद्ध दर्शन', गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी की वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति' और 'पुराण परिशीलन' जैसी अनेक महान कृतियाँ उनके निजी प्रयत्नों से ही संभव हो सकीं।'' ये दुर्लभ पुस्तकें आज हिन्दी साहित्य की अमूलय निधि है।

आचार्य शिवपूजन की रचनाएँ ढाई हजार पृष्ठों में बिखरी हुई है। इनका देहाती दुनिया हिन्दी का प्रथम आंचलिक उपन्यास है। 1926 में प्रकाशित इस आंचलिक उपन्यास के वर्षों बाद 1953 ई० में फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आंचल' प्रकाशित हुआ था। 'देहाती दुनिया के प्रकाशन ने हिन्दी उपन्यास विधा की जड़ता को तोड़कर उसके विषय का विस्तार देते हुए जड़ता को तोड़ा था। 'डायरी लेखन' को एक विधा के रूप में स्वीकृत कराने में भी उनकी अहम भूमिका रही। अपनी रचनाओं तथा पत्र—पत्रिकाओं के माध्यम से उन्होंने हिन्दी भाषा को संस्कारित किया। हिन्दी के बहुविध विकास में अपने जीवन का एक—एक पल समर्पित्त करनेवाले आचार्य शिवपूजन सहाय की मृत्यु पर रामधारी दिनकर ने कहा था—''अगर शिवजी की सोने की मूर्ति बनाकर पन्ने की परतें चढ़ाई जाएँ तब भी उनके किए का प्रतिदान संभव नहीं है। शताब्दि वर्ष 1993 में उन्हें याद करते हुए कमला प्रसाद ठीक ही लिखते हैं—''बिहार के ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक गौरव के मूल्यांकन के लिए जितना काम उन्होंने किया, लिखा, प्रकाशित कराया—उतना 'न भूतो न भविष्यति।''

आचार्य शिवपूजन सहाय के देशकाल और इसकी सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक परिवेश पर विचार करें तो नवजागरण तथा पुनर्निर्माण का काल था। साहित्यिकारों, पत्रकारों और बुद्धिजीवियों को इस पुनर्निर्माण तथा जागरण सुधार कार्यों के विविध क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना था। आचार्य शिवपूजन सहाय ने अपनी पत्रकारिता, भाषा संस्कार का कठिनतम कार्य और अपनी साहित्यिक रचनाओं में अपने समय की चुनौतियों का सामना किया। पत्रकारिता और निबंध ने तो सामयिक प्रसंग स्वाभाविक रूप से उपस्थित रहते हैं, कहानी जैसी गल्प—विधा में भी इन्होंने अपने समकालीन प्रश्नों एवं जीवन यथार्थ को विषय—वस्तु बनाया। इनकी कहानियों पर विचार व्यक्त करते हुए चन्द्रभूषण मिश्र लिखते हैं—''शिवजी की कहानियों की विषय—वस्तु जितनी यथार्थ एवं समाज परक है, उनकी भाषा भी विषयानुरूप एवं

रोचक है। विषय–वस्तु के अनुरूप उनकी भाषा चलती है। विषय और भाषा का सामंजस्य उनकी कहानियों में अत्यंत सुन्दर रूप में हुआ है।

गाँव और ग्रामीण समाज के प्रति उनकी आत्मीयता हिन्दी रचनाकारों में विरल है। गाँवों के चतुर्दिक विकास के बिना देश का सुदृढ़ होना संभव नहीं है, इस सत्य से वे परिचित थे। अपने उपन्यास 'देहाती दुनिया के प्रथम संस्करण की भूमिका में उन्होंने लिखा–''मैं ऐसे ठेठ देहात का रहनेवाला हूँ, जहाँ इस युग की नई सभ्यता का बहुत धुंधला प्रकाश पहुंचा है। वहाँ केवल दो ही चीजें प्रत्यक्ष देखने में आती है अज्ञानता का घोर अंधकार और दरिद्रता का ताण्डव नृत्य। वहीं पर मैंने स्वयं जो कुछ देखा–सुना है, उसे यथाशक्ति ज्यों–का–त्यों इसमें अंकित कर दिया है। इसका एक शब्द भी मेरे दिमाग की खास उपज या मेरी मौलिक कल्पना नहीं है। यहाँ तक कि भाषा का प्रवाह भी मैंने ठीक वैसा ही रखा है, जैसा ठेठ देहातियों के मुख से सुना है। अपने गाँव उनवांस में उन्होंने एक पुस्तकालय की भी स्थापना की थी ताकि गाँव के लोग पुस्तकों के माध्यम से अपने देशकाल, साहित्य–संस्कृति से जुड़ें और उनकी चेतना का विकास हो।

धर्मांधता उन्हें पसंद नहीं थी। इस पर चोट करते हुए उन्होंने 1928 ई० में लिखा था–''रामभक्ति की ओट में आज सारे देश में जो अत्याचार हो रहे हैं, उनसे कोई अनजान नहीं है, मर्यादा पुरूषोत्तम राम को लोगों ने खिलौना बना दिया है। उनके आदर्श चरित्र का महत्व गया चूल्हे के भीड़ में, सिर्फ अपने पापों का पुचारा देने से मतलब है। धर्मांधता आज भी देश की ऐसी समस्या बनी हुई है, जिसका निदान निकट भविष्य में आसान नहीं दिख रहा है। इसके विरूद्ध निर्भीक होकर चोट करने से लोग बच रहे हैं। जबकि 1928 के परतंत्र भारत में ही उन्होंने चोट किया था क्योंकि देश और समाज के विकास में अवरोध बन रहे नकारात्मक मूल्यों को वे भली–भाँति पहचानते थे और इनका प्रतिरोध करना अपना सामाजिक कर्त्तव्य ।

आचार्य शिवपूजन सहाय की रचनाओं में उनके समय की अंतर्धारा विद्यमान है। हिन्दी भाषा, साहित्य–संस्कृति और समाज का उन्नयन ही उनकी रचनाओं का अभीष्ट है।

संदर्भ :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक–डॉ० नगेन्द्र, पृष्ठ–451.
2. वही, पृष्ठ 526,
3. वही, पृष्ठ 531.
4. आजकल, जून, 1993, पृष्ठ–7.
5. इंडिया टुडे, साहित्य वार्षिकी, 1993, पृष्ठ–12
6. कथादेश, अगस्त, 1998, पृष्ठ–20.
7. जनसत्ता, 12 दिसम्बर, 1993, पृष्ठ–8
8. वही, पृष्ठ–8.
9. गगनांचल, वर्ष–16, अंक–3 / 1993, पृष्ठ–19.
10. हिन्दी कहानी के विकास में बिहार का योगदान, पृष्ठ–63.
11. शिवपूजन–रचनावली, प्रथम खंड, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पृष्ठ–416.
12. प्रभात खबर, बिहार विशेषांक, खंड–पाँच, 12 जुलाई, 2004, पृष्ठ–2.